RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

आधुनिक संस्कृत रूपकों में वर्णित नारी पात्रों का वैवाहिक जीवन

[1]अनुपम कुमारी; [2]डॉ. सरस्वती

[1]शोधकर्त्री पीएच.डी. (संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)
[2]शोध–निर्देशिका (जाकिर हुसैन कॉलेज)

विवाह शब्द स्वयं में उन सभी बंधनों को द्योतित करता है जिनमें केवल दंपत्ति ही नहीं अपितु दो परिवार आपस में सभी प्रकार से बंध जाते हैं। विवाह वास्तव में दो परिवारों का मिलन है परंतु प्रथमदृष्टया जो इससे सबसे अधिक प्रभावित होता है वह नारी है। नारी अपने एक परिवार को छोड़कर दूसरे परिवार में ठीक उसी प्रकार मिश्रित हो जाती है जिस प्रकार प्रकाश की रेखा एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी समान गति तथा निर्बाध रूप से सभी को प्रकाशमान करती रहती है।

विवाह के इस वास्तविक रूप को मानव समाज ने समझा भी और सराहा भी। अपनाने के इस बंधन को सभी ने पवित्र समझा परंतु कालांतर में यह विवाह अपने नियमों और मान्यताओं के कारण कई प्रकारों में बँट गया।

इस प्रकार इस पवित्र बंधन को आठ भागों में बाँटा गया। ये आठ प्रकार निम्न प्रकार से हैं–

(i) ब्रह्मविवाह
(ii) देव विवाह
(iii) आर्ष विवाह
(iv) प्राजापत्य विवाह
(v) आसुर विवाह
(vi)गान्धर्व विवाह
(vii) राक्षस विवाह
(viii) पैशाच विवाह

विवाह के इन आठ प्रकारों में प्रथ्झम चार प्रकार अपने आप में प्रतिष्ठा को प्राप्त किए हुए हैं परन्तु अन्तिम चार समाज में अपनाए तो जाते हैं परन्तु सम्मान हीनता के साथ। ये वांछनीय अथवा अवांछनीय, विवाह प्रकार कोई भी हो, अन्ततोगत्वा इससे यदि कोई सर्वाधिक प्रभावित होता है तो वह है– नारी।

प्राचीन कतिपय नाट्यकारों ने जहाँ अपनी नाट्यों में गान्धर्व विवाह को कहीं–कहीं पर ही स्थान दिया है, वहीं आधुनिक नाट्यकारों ने इसकी भीषणता और इसके सबसे निंदनीय रूप को उजागर किया है। आधुनिक समय में जहाँ समाज में वांछनीय विवाह प्रकारों पर युवाओं द्वारा कम बल दिया जाता है जो कि परिवार तथा समाज दोनों में महत्त्वपूर्ण एवं सम्माननीय होते हैं वहीं उनके स्थान पर अंतिम चार अवांछनीय प्रकारों पर अधिक बल दिया जाता है, क्योंकि समय परिवर्तन के साथ–साथ नैतिकता का जो ह्रास हुआ है उसने इन विवाह प्रकारों को बल दिया है।

नारकण्डाश्रम नाट्य की नायिका शकुन्तला जो कि भारत–पाक विभाजन में अपने परिवार से अलग हो गई थी कि कथा वर्णित है। पिता की अनुपस्थिति में गान्धर्व विवाह के द्वारा गर्भवती उस कन्या को प्रवास से लौटे पिता के द्वारा पतिगृह भेजा जाता है, परंतु गोली लगने वाली दुर्घटना के कारण शकुन्तला का पति अपनी स्मरण शक्ति खो चुका है, और इसी दृश्य के इर्द–गिर्द पूरा नाट्य अवलोकित होता रहता है।

गन्धर्व विवाह की चार्च विष्णुपदभट्टाचार्य जी के कञ्चुकि में भी है। आधुनिक नाट्यकारों ने विवाह के अनेक प्रकारों की चर्चा की है, लेकिन इन नाट्यकारों का मुख्य केन्द्र विवाह के स्वरूपों को दर्शाना नहीं अपितु विवाह में आ रहे व्यवधानों अथवा विवाह को करने के लिए सरल से सरल उपाय को ढूँढ़ने का है। कई स्थलों पर नाट्यकारों ने प्रेम विवाह का समर्थन भी दिखाया है।

''व्यासराज शास्त्री द्वारा रचित लीला–विलास प्रहसन में लीला का विवाह पिता और माता दोनों के ही द्वारा अलग–अलग स्थानों पर तय किया जाता है, परन्तु लीला इन दोनों के ही निश्चित वर को वरण करना नहीं चाहती। वह अपने सहपाठी विलास कुमार से प्रेम करती है और इस विषय में उसके भाई सत्यव्रत को पूर्ण जानकारी होती है। आधुनिक युग होने के कारण सत्यव्रत पुरुष होने के कारण उपरांत भी अपनी बहन के प्रेम का निर्धारक और निर्णायक बनते हुए उसका समर्थन करता है। अन्त में दस्यु के बंधन से लीला को मुक्त करवाने के फलस्वरूप विलास को लीला पत्नी रूप में प्राप्त हो जाती है।''[1]

रमा चौधरी आधुनिक नाट्यकृर्त्तियों में शिरोमणि हैं। उनके नाट्य आधुनिक समाज के प्रत्यक्ष प्रतिबिंब के रूप में समाज तथा उनकी सोच को उजागर करते हैं। विवाह के विषय में रमा ने अपनी नायिका पंकजनयना को उच्च कोटि का बनाते हुए उसे किसी भी पुरुष के हाथ में सौंपना स्वीकार नहीं किया है। पंकजनयना की माता अपनी पुत्री के विषय में इतनी तटस्थ हैं कि किसी भी अवस्था में वो अपनी पुत्री को उसके अनुरूप ही घर और वर प्रदान करना चाहती है। वो विवाहार्थी बनकर आए धनी परंतु अयोग्य वर को सीधे–सीधे

[1]आधुनिक संस्कृत नाटक (नए तथ्य–नया इतिहास), रामजी उपाध्याय, पृष्ठ 971–72

RRIJM 2015, All Rights Reserved

इसलिए मना कर देती है क्योंकि वह अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर चाहती है, केवल धनी नहीं।

''नवोढ़ा वधू वरश्च' में नपुंसक कन्या के विवाह के आ रही परेशानियों का वर्णन है। परिवार द्वारा विवाह में रूकावट ना आए इसलिए इस बात को छिपाया जाता है कि कन्या नपुंसक है। विवाहोपरान्त पति–पत्नी के मिलन की सभी चेष्टाओं को व्यर्थ कर दिया जाता है, परन्तु अंत में पत्नी के द्वारा स्वयं ही पति को सब कुछ निवेदित कर दिया जाता है। यथार्थ के उद्घाटन से पहले कन्या के द्वारा इस वचन को ले लिया जाता है कि पति द्वारा उसका त्याग नहीं किया जाएगा।''[2]

भक्तसुदर्शन और शंकराविटं इन दोनों ही नाट्यों में प्रेम विवाह का समर्थन और उनका विरोध समान रूप से नजर आया हुआ है।

भक्तसुदर्शन में जहाँ माँ जगदम्बा द्वारा स्वप्न में दर्शन देकर यह आदेश दिया जाता है कि शशिकला सुदर्शन को ही वर रूप में चुने, इसलिए शशिकला सुदर्शन से प्रेम कर उससे विवाह करना चाहती है वहीं शंकराविटं में कन्या अपने सहपाठी से स्वेच्छा से प्रेम करती है और उसी से प्रेम–विवाह करना चाहती है।

इन दोनों ही नाट्यरूपों में विवाह का एक अलग ही स्वरूप निर्दिष्ट हो रहा है जो कुछ लोगों के लिए न तो वांछनीय है और न ही अवांछनीय। समाज का एक वर्ग जहाँ इसका विरोध करता है वहीं दूसरा इसके समर्थन में दृष्टिगोचर है।

सावित्री–चरितम् डॉ. मिजाजी लाल शर्मा द्वारा रचित इसी प्रकार का एक और नाट्य स्वरूप है, परंतु इसकी कथावस्तु अन्य सभी कथावस्तुओं से सर्वथा भिन्न जान पड़ती है क्योंकि न तो इसमें प्रेम–प्रसंग है और न ही पिता द्वारा कन्या को बलपूर्वक अथवा कन्या की इच्छा से ही अपने चुने हुए लड़के के साथ विवाह करने के लिए बाधित करते हुए दिखाया गया है। यहाँ तो स्थिति ही सर्वथा विपरीत है। पिता द्वारा कन्या को स्वेच्छानुसार वर ढूँढ़ने की आज्ञा दी जाती है और पूर्ण रूप से कन्या की इसमें सहायता भी की जाती है। वे कन्या के विषय में सोचते हैं कि वह केवल, धरोहर रूप में ही आपके निकट रह सकती है, सदैव नहीं।[3] प्रस्तुत नाट्य में कन्या स्वेच्छानुसार वर ढूंढ लिए जाने पर भी यह वक्तव्य कि गुणवान अथवा गुणहीन, एक बार वरण किए हुए वर का परित्याग संभव नहीं, इस बात को द्योतित करता है कि कन्याओं को सुयोग्य वर न मिलने पर भी वे उसकी अयोग्यता के कारण उसका परित्याग नहीं करती थी।

नाट्यों में विवाह के इन प्रकारों से यह दृष्टिगोचर है कि किस प्रकार वर्तमान समय में विवाह के प्रारूपों ने अपना नया रूप धारण कर लिया है। जिसके कारण अन्य मूल रूपों में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

पुनर्विवाह

नारी जीवन सदैव परीक्षा पूर्ण करने की कसौटियों से भरा हुआ रहा है। वर्तमान काल हो अथवा प्राचीन हिन्दू विवाह आदर्श अथवा अन्य धर्मों के विवाह आदर्श–सदैव से यहाँ स्त्रियों को अपने सतीत्व की रक्षा करने का पाठ पढ़ाया गया है। पति के जीवित रहने अथवा उनकी मृत्यु के पश्चात्, परिस्थिति कैसी भी हो लेकिन स्त्री को अपनी अस्मिता और अपना सतीत्व दोनों ही बचाकर रखना अनिवार्य था। इनके हीन हो जाने पर नारी का जीवन अत्यन्त असहनीय स्थिति से गुजरता हुआ निम्न से निम्नतर चला जाता था। आज भी परिस्थिति में कुछ बहुत अन्तर नहीं परन्तु जितना भी अन्तर दिखाई देता है वह नारियों के लिए कम से कम तत्काल प्राणघातक तो नहीं ही है।

प्राचीन नाट्यों में अगर देखें तो विधवा–विवाह या पुनर्विवाह के सङ्केत बहुत कम प्राप्त होते हैं। कालिदास अथवा भास की रचनाओं में प्रधानतः जहाँ नायक की मृत्यु नही होती और यदि किसी पत्नी का परित्याग कर दिया जाए तो वे पुनः उसी के पास लौट आती है, ऐसे नाट्यों को ही प्रारुप प्रदान किया जाता है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में जहाँ शकुन्तला परित्यक्ता होने पर भी पुनः विवाह नहीं करती वहीं भास की वासवदत्ता स्वयं पति से वियुक्त हो जाने पर भी पुनः विवाह की चेष्टा नहीं करती।

इन दोनों ही प्रमुख नाट्यों में केवल स्त्री का पुनर्विवाह नहीं हुआ परन्तु नायक दुष्यन्त और उदयन किसी न किसी प्रकार से दाम्पत्य जीवन का आनंद उठा रहे थे। उन्हें पुनर्विवाह करने में भी कोई संकोच न था। परिस्थितियाँ और स्थितियाँ केवल और केवल नारियों के लिए ही अपरिवर्तनीय रहीं।

आधुनिक नाट्यकारों ने समाज की बदलती परिस्थिति के अनुसार अपने नाट्यों में भी इस समस्या का कोई उपाय तो नहीं सुझाया परन्तु कतिपय स्थानों पर पुनर्विवाह का उल्लेख अवश्य किया है।

वृत्तशंसिच्छत्रम् की नायिका द्वादश वर्षीय मीरा जिसका 28 वर्षीय पति अपनी 26 वर्षीय सास से ही प्रेम करने लगता है, के जीवन में अनेक बाधाएँ आती हैं और वह आत्महत्या का प्रयास करती है, परंतु त्यागी बाबा द्वारा उसके प्राणों की रक्षा कर ली जाती है और वही बाबा उसे अपने पूर्व पति के रूप में ही प्राप्त हो जाते हैं। नाट्य के इन दृश्यों में संतुष्टि तथा हर्ष की भावना तो स्वतः आ ही जाती है परन्तु पति वियोग के कारण 18 वर्षों तक जिस मीरा को विधवा रूपी जीवन अथवा कहा जाए कि कष्टपूर्ण जीवन बिताना पड़ता है उसके लिए समाज में केवल एक ही स्वरूप है– विधवा। वह किसी भी पुनर्विवाहिता के रूपमें न तो सोची जा सकती है और न ही उसका वो अधिकार है।

[2]कलकत्ता संस्कृत साहित्य पत्रिका के 1963 के अङ्कों में प्रकाशित

[3]कन्या परधनं नूनं न्यास पिति ह्युच्यते।
कालेन यमितः सोऽपि सर्वदा न दृश्यते।।
सावित्रीचरितम्– डॉ. मिजाजी लाल शर्मा, पृष्ठ 66

इन परिस्थितियों से तत्कालीन समाज की रूढ़ि परंपराओं का आभास होता है कि जिस समाज ने एक 12 वर्षीय बच्ची को पति के अभाव में 18 सालों तक विधवा समझा, क्या वह समाज उसे अन्य किसी के साथ विवाह करने का अवसर नहीं दे सकता था। नाट्यानुसार नायिका मीरा सरल हृदया, सुन्दरी तथा भावुकता से परिपूर्ण थी, तो क्या ऐसी विधवा को कोई पुरुष अपने लिए सुयोग्य नहीं समझता था? क्या यह आवश्यक था कि वो सारा–जीवन स्वयं को त्यागे हुए पति अथवा मृतक समझे जाने वाले पति के विरह में त्याग दे?

लीला राव की 'बालविधवा' भी इसी कथा को जीवंत करती एक अन्य उदाहरण रूपा प्रस्तुति है। ससुराल में दासी जीवन व्यतीत करती बाल विधवा पार्वती अपनी इच्छा एवं अनुराग को दबाकर जी रही थी। वह चाहकर भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। अनूप के साथ घर छोड़ देना भी उसके लिए कठिनाईयों का सागर जन्म दे देता है जिसके कारण वह आत्महत्या तक करने पर मजबूर हो जाती है।

प्रस्तुत नाट्य में लीला राव यह संदेश देती हुई दिख रही है कि विधवाओं का पुनर्विवाह कर देना चाहिए अन्यथा वो ऐसे कमद उठाने पर मजबूर हो जाती है जो समाज में अवांछनीय है।

''इसके विपरीत रमा चौधरी ने अपनी विधवा नायिका को पुरुष के सहारे न छोड़ उसके जीवन की दिशा ही बदल दी। रसमय–रासमणि में रानी रासमणि ने स्वयं अपनी राजधानी की रक्षा की और नीहले–गोरण्ड सैनिकों को परास्त किया। दक्षिणेश्वर में 12 मन्दिरों का निर्माण करवाकर उन्होंने रामकृष्ण परमहंस को प्रधान पुजारी बनाया। इस प्रकार लोकहित के कार्यों में संलग्न अन्त में महासमाधि प्राप्त कर ली।''[4]

सन्दर्भ ग्रन्थ

मूल ग्रंथ

1. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम. महालक्ष्मी प्रकाशन. आगराः 1962.
2. चौधरी, रमा. देशदीपम. कलकत्ताः प्राच्यवाणी प्रकाशन, फेडरेशन, स्ट्रीट
3. चौधुरी, रमा. रसमयरासमणि. कलकत्ताः प्राच्यवाणी, प्रकाशन
4. दीक्षित, मथुराप्रसाद. भक्तसुदर्शन. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सिरीज, 1961
5. भास, स्वप्नवासवदत्तम्. (व्या.). आचार्य जगदीश प्रसाद पाण्डेय. वाराणसीः भारतीय विद्याभवन, 1989.
6. लीलारावदयाल, बाल विधवा. मंजूषाः वर्ष–11, अंक 8, जून, 1955
7. लीलारावदयाल, वृत्तसंशिच्छत्रम्. मंजूषाः वर्ष 9, अंक 10, अप्रैल, 1957
8. लीलारावदयाल, नारकण्डाश्रम. दिव्यज्योतिः अक्टूबर, 1980
9. शास्त्री, पट्टाभिराम. नवोढ़ावधूवरश्च. मुम्बईः देववाणी परिषद्
10.शास्त्री, व्यासराज. लीलाविलास. कलकत्ताः पण्डित विश्वेश्वर विद्या, काव्यतीर्थ
11.त्रिपाठी, कृष्णमणि. सावित्रीचरितम्. वाराणसीः संकटाप्रेस, सीराकुआँ

सहायक ग्रंथ (संस्कृत)

1. उपाध्याय, रामजी. आधुनिक संस्कृत नाटक भाग 1–2. सागर संस्कृत विश्वविद्यालयः प्रथम संस्करण
2. चक्रवाल, इन्द्रा. उपरुपकों का उद्भव एवं विकास. वाराणसी विश्व विद्यालय प्रकाशन चौकः 1936
3. द्विवेदी, डॉ. कैलाशनाथ. कालिदास एवं भवभूति के नारी पात्र. कानपुरः 1994
4. द्विवेदी, डॉ. कैशलानाथ. संस्कृत कवियित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व. लखनऊः 1994
5. द्विवेदी, डॉ. मीरा. आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार. दिल्लीः शक्तिनगर, परिमल पब्लिकेशन, 1996.
6. शर्मा, डॉ. गजानन्द एवं जीत मल्होत्रा. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी. रचना प्रकाशनः 1971
7. वेदालंकार, श्रीहरिदत्त. हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास. लखनऊः हिन्दू समिति, सूचना विभाग, 1970

अंग्रेजी ग्रंथ

1. Kale, M.R. Svapnavasavadatta of Bhasa. Motilal Banarasidas: 2015.

[4]आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार– मीरा द्विवेदी, पृष्ठ 33